

सिर्फ कुछ बच्चों के लिए, एक आकर्षक स्कूल और प्रसन्न पोशाकें हैं, ढेर सारे बच्चे, सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं, ढेर सारे बच्चे होटलों में, कप बसियाँ रगड़ रहे हैं, उनके चेहरे मेमनों की तरह दयनीय है।

संताली आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल समाज के रंग वर्ण भेद का उद्घाटन करती हैं जहाँ दिन में दलितों की देह अछूत परन्तु रात के धुंधलके में गदराई और प्रिय लगने लगती है। निर्मला पुतुल लिखती हैं- वे घृणा करते हैं हमसे, हमारे कालेपन में, हँसते हैं व्यंग्य करते हैं हम पर, हमारे अनगढ़पन पर कसते हैं फब्कियाँ, प्रिय है तो बस, मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने, उन्हें प्रिय है, मेरी गदराई देह।<sup>4</sup>

दलित कविता भूमंडलीकरण की पूंजी पोषक सभ्यता-संस्कृति को रचनाओं से झकझोरती है। वर्तमान समय में जो जितना हड़प लेता है वह उतना ही बुद्धिमान माना जाता है। निश्चल जन इसे नहीं समझ पाते हैं और बार-बार तंत्र के षड्यंत्र में फंसकर लूट जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य पंक्तियाँ सही है-

नहीं जानते थे, कवादद करना, लूटना, निर्बल और असहाय को ! नहीं जानते थे, हत्या करना, वीरता की पहचान है, लूट खसोट अपराध नहीं संस्कृति है।

कवि ऋतुराज राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर शोषितों दलितों की पीड़ा को वाणी देते हैं -

सताए हुए लोग सब देशों में एक जैसे हैं। बिना बात तेज कदमों से चलते हुए। वे कहीं मुँह छिपाने की उम्मीद से बेहद डरे हुए होते हैं। सारे देशों में शोषण, नफरत और हत्याएं करने के तरीके एक जैसी ही तो हैं।

भजनलाल मानवता के कृत्रिम विभाजन को न्याय संगत मानते हैं। उनका नकार उल्लेखनीय है। जाति के आधार पर ऊँचा और नीचा। यह धर्म नहीं अधर्म है। तुमने कभी सोचा? इस

धर्म की पाखण्डता, हम जड़ से मिटाएँगे।

आज भूमंडलीकरण, विश्वापन और बाजारवाद के युग में मीडिया भी दलितों के पक्ष में अधिक मुखर नहीं हुआ है ? बिकाऊ मीडिया केवल टीआरपी सेलिब्रिटीज का दामन थामे दिखता है, दलितों के, वंचित समाज के प्रति ध्यान नहीं देता है। ग्लोबल विलेज या विश्वग्राम की संकल्पना में वर्ण और जातीयता की संकीर्णता प्रच्छन्न रूप में तो कम दिखाई पड़ती है परन्तु परोक्ष में यह अधिक कट्टर व आक्रमक बनकर उभरी है। वैश्विक व राष्ट्रीय

सताए हुए लोग सब देशों में एक जैसे हैं। बिना बात तेज कदमों से चलते हुए। वे कहीं मुँह छिपाने की उम्मीद से बेहद डरे हुए होते हैं। सारे देशों में शोषण, नफरत और हत्याएं करने के तरीके एक जैसी ही तो हैं।

दोनों स्तरों पर रंग भेद, नस्लभेद या वर्ण भेद के रूप में इसकी व्याप्ति बनी है।

जयप्रकाश लीलावान मुखौटेधारी राजनेताओं को दोगला करार देते हैं। दलितों में जो बड़े बन गये दिखते हैं। आज उच्च संपन्नवंचित से वही व्यवहार करता है जो सवर्ण दलित के साथ करता आया है। लीलावान दलितों के पतन का एक कारण आपसी कलह भी मानते हैं।

हमारे हो सकने वाले, रहनुमा की, आजकल अमीरों के आयोजनों में, बची रह गई, जूटन खाने के लिए, सरे आम, आने जाने लग गए हैं, और इसीलिए, पतन के इस पुष्प का नजारा, हमारे इस, सबसे प्यारे देश की, आँखों की बीमारी बढ़ रही है।

देश में कुल आबादी का 82

प्रतिशत दलित और वंचित है। जिनका योगदान भारत के निर्माण में अहम है। दलित में आत्मचेतना और आत्मविश्वास बढ़ता दिख रहा है। अपने अधिकार के प्रति सजग हो रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों की दशा में उतना अधिक बदलाव नहीं हुआ है, जितना होना चाहिए। दलित कविताएँ केवल वेदना, अपमान, अन्याय और आक्रोश को रेखांकित नहीं कर सकती, स्वतंत्रता, सह-अस्तित्व, सह-संबद्धता को प्रकट करती हैं। दलित कविता में समतामूलक मानवीय समाज का निर्माण का स्वर है।

## सन्दर्भ सूची

- 1 अब और नहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1991, पृष्ठ.20
- 2 दर्द के दस्तावेज एस एन सिंह, पृष्ठ10
- 3 लकड़बग्घा हँस रहा है, चंद्रकांत देवताले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली .2000, पृष्ठ 64
- 4 नगाड़े की तरह बजते शब्द, मेरा सब कुछ अप्रिय है उसकी नजर में, निर्मला पुतुल, पृष्ठ72
- 5 बस बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ.100
- 6 आशानाम नदी, ऋतुराज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 27
- 7 भारतीय दलित साहित्य, संपा, मनोज कुमार आर पटेल एवं प्रेमचंद एम कोराली, दर्पण प्रकाशन, बल्लभ विधानगर, गुजरात .2008, पृष्ठ 529
- 8 समय की आदमखोर धुन, जयप्रकाश लीलावान, अनामिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2009, पृष्ठ68 ■